Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2021 = 7.380, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, NOV-DEC, 2021, VOL- 9/68

कैलाश वाजपेयी की कविता में गहन आध्यात्मिक विचार की उपस्थिति

सरिता वर्मा[1], Ph. D. & कौशल[2], Ph. D.
[1]एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, मेरठ कॉलिज, मेरठ
[2]हिंदी विभाग

Paper Received On: 21 DEC 2021
Peer Reviewed On: 31 DEC 2021
Published On: 1 JAN 2022

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

साहित्य या काव्य की कोई भी विद्या अपने युग का दर्पण होती है। एक चेतन बुद्धि के कवि की रचना कभी भी विचार शून्य नहीं हो सकती। कैलाश वाजपेयी जी अपने युग के सबसे अधिक चिंतनशील कवियों में से एक थे। उनकी रचनाओं में बार–बार गहन विचारशीलता के दर्शन होते हैं। उनकी रचनाओं में प्राप्त होने वाले विचार विविध गंभीर विषयों से जुड़े थे। उनके साहित्य में खासकर उनकी कविताओं में दिखने वाली विचार की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि वे अपने युग की समस्याओं के प्रति जागरूक थे। वे उन्हें बार–बार उठाते थे, उनके हल सुझाते थे।

कैलाश वाजपेयी जी की रचनाओं में आजादी का घटनाक्रम, उसके बाद की स्थिति, पड़ोसी देशों के साथ युद्ध, देश की आंतरिक दशा आदि का स्पष्ट चित्रण हुआ है। इसके साथ–साथ कवि के व्यक्तिगत विचार, उनका विकास, उनकी दिशा आदि भी उनकी रचनाओं में स्पष्ट दिखाई देती है। कैलाश वाजपेयी जी कविताओं की उत्तरवर्त्ती कविताओं में गहन आध्यात्मिक भाव की अभिव्यक्ति हुई है। वे स्वयं कहते थे, **''मैं अपने को सार्वभौमिकता से जुड़ा हुआ कवि मानता हूँ, जो निरंतर अपने अहं का आत्मशोधन करने में रत् है।''** विश्व ज्ञान–विज्ञान से संपृक्त उनका कवि मन बार–बार श्रीमद्भागवत, महाभारत, रामायण के पुरा–प्रसंगों और भारतीय दर्शन की और लौटते हुए यही जताता है कि अंततः वह इसी महादेश की धूल–मिट्टी और जलवायु का कवि है।

कैलाश वाजपेयी जी की आरंभिक चिंतनशील रचनाओं से ही यह स्पष्ट था कि अवश्य ही उनकी उत्तरवर्ती रचनाएँ गहन चिंतनशील भाव से पूर्ण होंगी। **'पृथ्वी का कृष्णपक्ष'** प्रबंध काव्य की भूमिका में उन्होंने लिखा है– **''सब देशों की कविता अपने वर्तमान और अतीत से प्रेरित प्रभावित हुआ करती हैं। पुराख्यान हमारी जातीय स्मृति का महत्वपूर्ण अंग है। पुराख्यान (मिथक) के विषय में मान्यता यह है कि पुराख्यान, चेतना और रूढ़ि का अंर्तनाट्य है, जो हमारे आद्यचित पर पड़ें प्रभावबिम्बों को**

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

समय–समय पर आंदोलित करती है। पश्चिम ने इतिहास लिखे। हमने पुराख्यान जिए। ऐसा इसलिए कि हमने काल को ताल या कुँआ नहीं बल्कि हमने समय को ऐसी नदी माना जो सदानीरा है और उसका बखान जब भी कोई करेगा मुहावरा हमेशा पुराख्यान का ही रहेगा। श्रीमद्भागवत से प्रेरित 'पृथ्वी का कृष्ण पक्ष' भी एक ऐसा ही काव्य है।''[1]

उक्त काव्य में असमय अवसान ही परीक्षित की पीड़ा है। परीक्षित को मृत्यु का पूर्व ज्ञान नहीं है, इसलिए वह उसे 'बाँस की बेटी' तक कह देता है। वास्तविकता तो यह है कि केवल परीक्षित ही नहीं, संसार में ऐसा कोई भी तो नहीं है, जिसे मृत्यु का पूरा ज्ञान हो। किसी जीवित मनुष्य अथवा प्राणी को मृत्यु का पूर्ण बोध होना संभव भी तो नहीं है। हम सदैव दूसरों को अस्त होते हुए, मरते हुए देखते हैं। अपनी मृत्यु तो कोई देख ही नहीं सकता तो जानेगा कैसे? आँखें भी जैसे पूरा संसार देखती है, परंतु स्वयं अपने को कभी नहीं देख पाती। दर्पण भी उन्हें उनके प्रतिबिम्ब के दर्शन करा सकता है, परंतु वे स्वयं तो अपने आपको कभी देख ही नहीं पाती। जीवन की भाँति मृत्यु भी एक शाश्वत सत्य है परंतु उसके अस्तित्व की सच्चाई का बोध मनुष्य को जीते जी नहीं हो पाता।

हिन्दू परिवार में जन्में कैलाश वाजपेयी के अन्दर ईश्वर और उसकी आस्था के भावों के बीज गहन भाव–रंजना की भाँति बचपन में ही अंकुरित हो गए थे। उम्र बढ़ने के साथ इन अंकुरित बीजों का विकास होता गया। व्यक्ति पर उसके बाल्यकाल के संस्कारों का सदैव ही दीर्घकालिक प्रभाव होता है। कैलाश वाजपेयी की कविताओं पर दिखने वाली आध्यात्मिक छाप उनके उन्हीं संस्कारों का मूर्त रूप है।

''कृष्ण तुम आओ/इस तरह न उस तरह/सब तरह उतरो पोर–पोर में समा
जाओ न/अकेले रहकर भी/दर्पण पर सबकी श्रेयस
परछाई बने प्रतिबिंब/बाद में/खाली का खाली/रहे सन्नाटा/
गाए/मनुष्यता/सारा अस्तित्व/उत्सव बन जाए/आओ।''[2]

किसी भी मनुष्य के गहन आध्यात्मिक विचार वास्तव में उसके व्यक्तित्व के परिचायक होते हैं। किसी कवि या साहित्यकार की रचनाओं में आध्यात्मिक विचारों की परछाई हमें यह बताती है कि वास्तव में अपने व्यक्तिगत जीवन में भी अमूक व्यक्ति किस प्रकार का व्यक्तित्व, सोच, विचार और चिंतन रखता है। कैलाश वाजपेयी जी की उत्तरवर्ती रचनाएँ उनके व्यक्तित्व के इसी पहलू से हमारा परिचय कराती हैं।

कैलाश वाजपेयी जी के अनुसार जीवन में 'दुःख' का मुख्य कारण 'बंधन' है। यह सत्य भी है यदि हमें जीवन में सब कुछ, जो भी हम करना चाहे करने की पूर्ण स्वतंत्रता हो। हमारी स्वतंत्रता सामाजिक, नैतिक, आर्थिक या किसी भी प्रकार का कोई भी 'बंधन' या 'अड़चन' न हो तो हम 'दुःख' से परिचय भी न कर सकेंगे। हम जो पाना चाहते हैं, उसे प्राप्त न कर पाने के कारण ही वे सब अड़चने या बंधन हैं, जिनके कारण हम दुःखी होते हैं, परंतु सही अर्थ में देखा जाए तो दुःख ही तो सुख का

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

बीज है। जिसने दुःख की पीड़ा नहीं भोगी वह वास्तव में सुख के असली भाव का अनुभव नहीं कर सकता। न ही वह सुख का अर्थ समझ सकता है और न ही उसकी कोई व्याख्या कर सकता है।

"घर, कपड़े, नौकरी, शहर बिना बदले
बिना प्रार्थना या उपवास के/तुम जो उत्तर चले आए हो,
फ़ना होने इस समुद्र में/इसे कोई नाम नहीं देना
नामों में बड़ा खतरा है/उम्रभर तुम असीमा के वास्ते
सीमा में रहकर रोये हो/(दुःख पैदा ही होता है बंदिश के अहसास से)"[3]

कवि ने स्वयं इस सत्य का अनुभव किया था। संसार में कोई भी व्यक्ति प्रसन्न नहीं है। सबसे पास दुःखी होने के अलग–अलग कारण है, परंतु फिर भी अंततः सभी दुःखी ही है।

कैलाश वाजपेयी जी की भाँति ही छायावाद के आधार स्तंभ 'सुमित्रानंदन पंत' और 'महादेवी वर्मा' ने भी संसार को, स्वयं को दुःखमय माना है। वे दुःख के साथ अपनापन अनुभव करते हैं। महादेवी जी की ये पंक्तियाँ इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं–

"प्रिय जिसने दुःख पाला हो/जिन प्राणों से लिपटी हो पीड़ा सुरक्षित चंदन सी
तूफानों की छाया हो जिसको प्रिय आलिंगन सी
जिसको जीवन ही हारे हों जय के अभिनन्दन सी
वर दो मेरा यह आँसू/उसके उर की माला हो।"[4]

इस संसार में दुःखी होने के सबके पास अलग–अलग कारण है, परंतु दुःख के प्रति जैसा अपनापन और लगाव छायावादी रचनाओं में दिखाई देता है। वैसा उत्तरवर्ती रचनाओं में देखने को नहीं मिलता। दुःख का मूल कारण 'बंधन' है और इच्छा भी एक 'बंधन' ही है। मनुष्य की अनेक इच्छाएँ होती हैं, जिन्हें पूरा करने के लिए वह विशेष तरीके से कुछ विशेष कार्य करता है और अंत में फिर इसी सब में वह अपनी मूल स्वतंत्रता गँवा देता है। हम सब अब जीवन को स्वतंत्रतापूर्वक वैसे नहीं जीते, जैसे हम उसे जीना चाहते थे। अपितु हम अपनी इच्छाओं के बंधन में बंधकर उन्हीं के अनुसार जीने लगते हैं।

कैलाश वाजपेयी जी ने आत्मा के परमात्मा से संबंध को पहचान लिया था। इसकी स्पष्ट झलक उनके साहित्य में दिखाई देती है। वे कहीं भी मृत्यु से भयभीत प्रतीत नहीं होते। वे पूरी उमंग और उत्साह से जीवन को जीते चलते हैं। उनके लिए जीवन जितना सत्य है मृत्यु भी उतनी ही निश्चित और सत्य है, जो व्यक्ति जीवन और मरण के रहस्य का जान लेता है इनकी सत्यता और शाश्वतता को समझ लेता है। वह वास्तव में सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है। ऐसा व्यक्ति संसार में रहते हुए, अपने सभी दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी उनमें लिप्त नहीं होता, वह कृष्ण की भाँति कर्मयोगी हो जाता है।

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

''उनके संग्रह 'महास्वप्न का मध्यांतर' की कविताएँ प्रारम्भिक संग्रहों से बिल्कुल अलग है। यहाँ से कैलाश वाजपेयी भारतीय और विश्व दर्शन, पौराणिक आख्यानों, मिथकीय चरित्रों की तरफ लौटते हैं। मृत्यु पर चिंतन करते, मनुष्य के अस्तित्व और उसकी सांस्कृतिक–सामाजिक स्थितियों को विभिन्न कोणों से देखने–परखने की कोशिश करते हैं। चेतन और अवचेतन मन से संवाद करते हैं। इस तरह उनकी कविताओं में दार्शनिक और आध्यात्मिक आभा दीप्त होती है।''[5]

कैलाश वाजपेयी जी की उत्तरवर्ती रचनाओं में उनके दोनों प्रबंध काव्य उनके आध्यात्मिक विचारों के तो प्रमाण है ही, साथ ही वे उनके मन, जीवन पर कृष्ण के प्रभाव के भी प्रमाण हैं। कृष्ण 'गीता' के प्रणेता हैं और 'गीता' भारतवर्ष में हिन्दू धर्म के कर्म–अकर्म, कर्त्तव्य और मुति के मार्ग का सबसे विश्वनीय स्त्रोत माना जाता हैं। कवि ने अपनी रचनाओं में जीवन मृत्यु मुक्ति संबंधी अपने आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति की है।

समय का समुद्र दीखता नहीं/भूगोल से लेकर खगोल तक
यह खालीपन जो हमें घेरे है/क्या कहा जाए
उसे आस–पास या फिर आकाश/उसका बयान/
बात नहीं भाषा के बस की/समझ की सतह पर
इतना भर दीखता/उग रहीं कोंपले/झर रहे पत्ते नीले पके
यह फटा बीज, धरा धसकी/यह चली साँस
बसी बस्ती/फिर पानी पानी सब।''[6]

संसार में हमारे देखने से लगता है कि जीवन–मृत्यु, आना–जाना लगा ही रहता है। संसार में जीव जन्म लेता है और समय–असमय अपना कर्म करके चला जाता है। परंतु यह सचमुच ठीक वैसा नहीं है, जैसा हम इसे देखते हैं। जाना या आना तो होता ही नहीं, केवल रूप ही बदलता है। आत्मा अथवा प्राणतत्व केवल अपना बाहरी आवरण ही बदलता है। परंतु क्या सचमुच 'आत्मा' या प्राणतत्व की मुक्ति संभव नहीं है? इसी प्रश्न की खोज में बुद्ध और महावीर ने अपने राजसी वैभव को त्यागकर वन गमन किया था। कैलाश वाजपेयी जी ने भी आत्मा या प्राणतत्व की मुक्ति के विषय में गहन रूप से विचार किया था। विचार ही नहीं बल्कि अपने ढंग से शास्त्रों, ग्रन्थों आदि के अध्ययन द्वारा इस प्रश्न का हल खोज लिया था। हल वही है, कर्म करते हुए भी उसमें संलिप्त न होने की कला को जो व्यक्ति सीख गया, वह संसार में रहते हुए भी, अपने सभी कर्म करते हुए भी सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।

कैलाश वाजपेयी के समकालीन रहे लीलाधर जगूड़ी जी ने आत्मा को एक नवीन रूप में देखा है–

''मेरी आत्मा लोहार/जिंदगी से रोज लोहा लेती है
मेरी आत्मा धोबी है/मन का मैल आँसुओं से धोती है
मेरी आत्मा कुम्हार है/सपनों की मिट्टी से आकार बनाती है

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

मेरी आत्मा बढ़ई है/रोज कोई न कोई खुराद लेती है
किसी भी आत्मा की कोई जाति नहीं होती
यहाँ किसी भी एक राम से काम नहीं चलने वाला
मैं आत्माराम भी हूँ सिर्फ मोचीराम ही नहीं
रोटी राम भी हूँ सिर्फ राम रोटी ही नहीं।''[7]

परंतु कैलाश वाजपेयी जी के विचार इस विषय में गहन और भिन्न प्रतीत होते हैं। उनके आध्यात्मिक विचारों की गहनता की कुछ माप तो इन्हीं पंक्तियों से हो जाती है–

''मैं और मृत्यु' यही दो महारोग/खाए चले जा रहे/दुनिया को!
जब कभी चोट लगे मन को/ध्यान से निहारना
तुम्हें उस घाव में अपनी अहंता का/ही अक्स दीखेगा
दाँव हारी हुई बाजी का/उपेक्षा–एक बस यही भर उपाय है
पीड़ा से बेचने का/रही मृत्यु/उसका उपचार है/विपस्सना।''[8]

उक्त पंक्तियों में कवि ने भगवान बुद्ध के दिखाए गए मार्ग पर चलकर जीवन की हर पीड़ा से बचने का उपाय बताया है। कवि ने संभवतः बौद्ध धर्म के साधना–पथ 'विपश्यना' का साक्षात् अनुभव किया है। जिस विश्वास से वे इसे 'मृत्यु' का उपचार बता रहे हैं उससे तो यही प्रतीत होता है कि वे स्वयं भी इस मार्ग पर कुछ पग ही सही पर चले हैं। पालि भाषा के शब्द 'विपस्सना' जिसे हिंदी में 'विपश्यना' कहते हैं, एक अद्‌भुत परिणाम देने वाली बौद्ध साधना पद्धति है। गीता में जो लिखा है कि यदि मनुष्य कर्म में संक्षिप्त हुए बिना कर्म करता है तो उसे मोक्ष अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। 'विपश्यना' बस यही सिखाती है, इसी का अभ्यास कराती है कि मनुष्य कर्म करते हुए भी उसमें लिप्त होने से कैसे बचे। इसी विषय पर कैलाश वाजपेयी जी के विचार श्री जयशंकर प्रसाद जी के सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'कामायनी' की इन पंक्तियों से पर्याप्त साम्यता रखते हैं–

''कर्मसूत्र–संकेत सदृश थी/सोमलता तब मनु को
चढ़ी शिजनी सी, खींचा फिर/उसने जवीन धनु को
हुए अग्रसर से मार्ग में/छूटे तीर से फिर वे
यज्ञ–यज्ञ की कटु–पुकार से/रह न सके अब थिर वे।''[9]

कर्मपथ पर बढ़कर ही मनुष्य इस जीवन की ऊँचाईयों को छू सकता है तथा अपनी आत्मा की मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त कर सकता है।

निष्कर्षतः कैलाश वाजपेयी जी की कविताओं में आध्यात्मिक भाव से संबंधित विचारों की उपस्थिति देखने को मिलती है। इस भाव के अभाव में जीवन उस पुष्प के समान है, जिसमें सुगंध नहीं होती। एक व्यक्ति कितना योग्य हो परंतु आध्यात्मिक भाव के अभाव में वह मनुष्य मात्र के लिए

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

उपयोगी नहीं हो सकता। आध्यात्मिक भाव मनुष्य मात्र के संस्कारों का आधार है, जिसकी उपस्थिति वाजपेयी जी के काव्य में बखूबी देखने को मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

कैलाश वाजपेयी : पृथ्वी का कृष्णपक्ष की भूमिका, पृ०सं० 7
कैलाश वाजपेयी : विहान (पृथ्वी का कृष्ण पक्ष), पृ०सं० 113
कैलाश वाजपेयी : सूफीनामा (सूफीनामा), पृ०सं० 10
डॉ० अरुणेन्द्र सिंह राठौर : महादेवी वर्मा का काव्य चेतना, पृ०सं० 116
जनसत्ता– संपादकीय पृष्ठ से उद्धृत, 2 अप्रैल 2015
कैलाश वाजपेयी : केशव ने कहा–3 (डूबा–सा अनडूबा तारा), पृ०सं० 35
लीलाधर जगूड़ी : जितने लोग उतने प्रेम, पृ०सं० 38
कैलाश वाजपेयी : देशना–3 (डूबा सा अनडूबा तारा), पृ०सं० 90
जयशंकर प्रसाद : कामायनी (कर्म, सर्ग कामायनी), पृ०सं० 39

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies